" सनातन संस्कृति पुनरुत्थान "

भगवान कहते है –

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

अर्थात् – हे भारत ! जब जब धर्म की हानि (और) अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं प्रकट होता हूँ । साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दुष्टों का नाश करने के लिये तथा धर्म की स्थापना करने के लिये मैं युग युग में प्रकट होता हूँ ।

भगवान अवतार लेकर धर्मनीति अनुसार संचालित समाज व्यवस्था, संस्कृतिक तथा दैवी निष्ठा का निर्माण करते है और दानवीय शक्तियों का नाश करते है ।

भगवान का अवतार सनातन संस्कृति के लिये और समाज की नियम व्यवस्था को धर्मनीति अनुसार सुचारु बनाने के लिये होता है । "सनातन धर्म अपौरुषेय है, अपौरुषेय अर्थात् जो किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित ना हो ।" सनातन धर्म ऐसे आदर्श, सिद्धांत, मूल्यों का समुच्चय है जो जीवसृष्टि का कल्याण करे, प्रकृति की रक्षा करें और किसी का अहित ना करें, वह सदैव और सर्वत्र कल्याणकारी है । जिसका आदि या अंत नहीं वह सनातन और सदैव शाश्वत जीवित रहने वाली कल्याणकारी जीवन पद्धति यानी सनातन संस्कृति ।

विश्व में समय समय पर प्रकट हुए महापुरुषों ने अपने समयकाल में फैले हुए भिन्न भिन्न मतमतांतर, मान्याताएँ, रुढियाँ और अंधश्रद्धा को दूर कर मानवता के कल्याण के लिये धर्मकर्म, स्वकल्याण और सर्व कल्याण के मूल्यों एवं सिद्धांतो के सूत्रों को समयोचित रीति से ढालकर प्रदान किया । जिससे उस जमाने के मानव अपनी पतनोन्मुखी भौतिकवादी जीवन शैली को बदलकर सनातन संस्कृति की इस लोक और परलोक में कल्याण करने वाली मानवतावादी सर्वकल्याणकारी जीवन शैली को अपनायें । किंतु कुछ महापुरुषो द्वारा उपदेशित सिद्धांतो का अनुसरण करनेवाले मानव समूह ने समयांतर में उस सिद्धांतो को महापुरुषो के नाम से अथवा नये नाम से जोड़कर आंशिक मूल्यों के समुच्चय को नये धर्म का नाम देकर मानवता को विभाजित कर दिया । इस प्रकार कालक्रम से अनेक खंड़ित विचारधारा वाले धर्म अस्तित्व में आते गये ।

लोग सनातन धर्म के शुद्ध मूल्यों को अपनाने की जगह मनोनुकूल अथवा वंशागत धर्म माननेवाले बन गये । इस प्रकार नये नये धर्म और संप्रदाय समाज में बढ़ने लगे । अवतारों की जगह जन्म मरण को प्राप्त होने वाले मानवों की पूजा का प्रचलन समाज में बढ़ने लगा । धर्म प्रचारक, धर्मस्थानों और आश्रम सत्य, तप, जप, योग, यज्ञ, सेवा, दानयुक्त सर्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत सादगीयुक्त जीवन के बदले राजसिक–तामसिक कार्यो प्रदर्शन मनोरंजन माया प्रधान बनते गये । परिणाम स्वरूप मानव समुदाय भी ऐसे आदर्शो को धारण करने के लिए प्रेरीत होने से कल्याणकारी कार्यो हेतु त्याग, धर्मकर्म, दान, परमार्थ, सादगी और वसुधैव कुटुम्बकम के बदले भौतिकता, परिग्रह वृत्ति प्रदर्शनयुक्त जीवन का मोह, आसक्ति, संकुचितता, स्वार्थी विचार और कर्म समाज में बढ़ने लगे । स्वजन, परिवार, मानवता, धर्म, पशु–पक्षी कल्याण, प्रकृति रक्षा हेतु त्याग, दान, समर्पण में कमी आने लगी । ज्यादातर मानव समाज स्वकेन्द्रित, संकुचित, स्वार्थी बन गया । परिणाम स्वरूप जीवसृष्टि मानव समाज और धर्म संस्कृति के प्रति त्याग के बदले स्वार्थ का व्यापार बढ़ने लगा । "जैसा संग वैसा रंग" इस प्रकार ऐसे संकुचित, स्वार्थी जीवन पद्धति में पोषित बच्चे, युवान खुद भी स्वार्थ युक्त संकुचित बनकर भौतिकता, मनोरंजन, प्रदर्शन प्रधान जीवन जीने लगे । जिससे सात्विक, परमार्थिक, त्याग, दान, धर्म, सादगीयुक्त जीवन का लोप होता गया ।

सादगी, तप, त्याग, योग, यज्ञ, दान, परमार्थ जीवन आदर्श बनना चाहिये । उसकी जगह शरीर की सुविधा, सौंदर्य, सम्मान, भौतिकता बढानी, परिग्रह वृत्ति, प्रदर्शन और सत्ता अधिकार से मानव आकर्षित और मोहित हो ज्यादातर मानव इन्द्रियलोलुप और राजसिक, तामसिक, अहंकारी बन संपत्ति का संग्रह प्रदर्शन करने लगे । परिणाम स्वरूप ज्यादातर मानव समुदाय ज्यादा भौतिक सुविधा प्राप्त करने के लिये आकर्षित मोहित होते गये परंतु ज्यादातर मानव क्षमतावान और समतावान न होने से समाज में अनीति और चोरी बढ़ती । प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से भी चोर, भिखारी, दु:खी, पीड़ित, दीनजनों की संख्या बढती गई । प्रकृति की नियम व्यवस्था का अनादर होने से एवं भूमि, जल, अग्नि, वायु का अधिक असंतुलन होने से प्राकृतिक आपदा बढ़ने लगी । "विधाता या कुदरत रुठी" जैसी बातो से मन मनाते लोग दु:ख सहन करने लगे । वर्तमान में जरुरी है कि स्वदोष दर्शन करके मनमाने धर्मकर्म की जगह सनातन धर्म के मूल्यों को और सनातन संस्कृति की सादगीयुक्त सर्व कल्याणकारी जीवन पद्धति को धारण करना एवं प्रसार करना ।

(पूज्य प्रितम मुनिजी के उपदेश से संकलित...)

सनातन धर्म –

"सनातन धर्म अपौरुषेय है, अपौरुषेय अर्थात् जो किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित ना हो।" सनातन धर्म ऐसे आदर्श, सिद्धांत, मूल्यों का समुच्चय है जो जीवसृष्टि का कल्याण करते है, प्रकृति की रक्षा करें और किसी का अहित ना करें, जो सदैव और सर्वत्र कल्याणकारी हो।

सनातन :– जो सृष्टि की शुरुआत से अंत तक टीके रहने में सक्षम हो, जिस का आदि या अंत नहीं वह सनातन।

संस्कृति :– संस्कृति यानी संस्कृत, सभ्य, श्रेष्ठ बनानेवाली सर्व कल्याणकारी जीवन पद्धति।

सनातन संस्कृति :– सनातन संस्कृति यानी जिस में मानव, पशु, पक्षी, वनस्पति, जीवमात्र का कल्याण और प्रकृति की रक्षा के श्रेष्ठ मूल्यों, आदर्शो, सिद्धांतों समाहित हो, जो जीवसृष्टि की शुरुआत से हो एवं अंत तक टीके रहने में सक्षम हो ऐसी जीवन पद्धति।

सनातन संस्कृति के आधारभूत मुल्यों और जीवन पद्धति :–

"सनातन संस्कृति" अनुसार जीवन अर्थात् नैतिकता, सात्विकता और आध्यात्मिकता का उत्तम समन्वय युक्त सर्व कल्याणकारी जीवन, जिससे शांति, नीति, एकता स्थापित हो और सभी का वर्तमान जन्म में और भविष्य के जन्मो में भी कल्याण हो।

सनातन धर्मानुसार मनुष्य के कल्याण हेतु चार आश्रम व्यवस्था –

हमारी संस्कृति चार आश्रमों की शिक्षा जीवन पद्धति, मार्गदर्शन देती है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम।

ब्रह्मचार्याश्रम – सनातन धर्म में आयु के प्रथम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करने के लिये समझाया है। ब्रह्म यानी परमतत्त्व (परमात्मा) चर्या यानी जीना या आचरण करना। ब्रह्ममय बनने हेतु जीना या कर्म करना ब्रह्मचर्याश्रम है। बालक उपनयन संस्कार के बाद गुरू के आश्रम में जाकर विद्या प्राप्ति हेतु स्वयं को गुरु को समर्पित करता है। गुरु बालक को भाषा एवं व्याकरण सिखाकर वेद, उपनिषद शास्त्रों का ज्ञान देकर उसे ब्रह्ममय बनने शिक्षा दीक्षा देते है।

उषाकाल में उठकर शौच स्नान से निवृत्त हो कर ब्रह्ममुहुर्त से ब्रह्मचारी की तप: साधना शुरू होती है और ध्यान, देवपूजन, संध्या, यज्ञ, स्वाध्याय, गुरुसेवा, जीवमात्र की सेवा करते हुए रात्रि के प्रथम प्रहर तक तपोमय दिनचर्या के बाद शरीर मन को विश्राम हेतु आवश्यक शयन करने मिलता है। इस प्रकार तप करते हुए ब्रह्मविद्या की आराधना के साथ जो भविष्य में गृहस्थी बनना चाहे वह व्यवहार विद्या यानी अर्थोपार्जन विद्या भी सिखाता है। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याश्रम के बाद ब्रह्ममय बनने हेतु संन्यासी बनता है या भोग कामना पूर्ति हेतु ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रमी बनते है।

गृहस्थाश्रम – जीवात्मा में जन्म जन्मातरों की जो कामनाये होती है उसे धर्मानुसार भुगतकर मुक्त होने हेतु ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम व्यवस्था है। गृहस्थाश्रम युवावस्था के सीमित समय के लिये होता है, जिवन भर के लिये नहीं।

व्यक्ति गृहस्थाश्रम में धर्मानुसार सांसारीक जीवन जीते अपनी भोगवृत्ति से मुक्त होकर धर्म और परमार्थ कर्म करते, माया आसक्तिसे मुक्त होकर त्यागवृत्ति स्वीकार कर वानप्रस्थाश्रमी बनते है। गृहस्थी को अपने ५० वर्ष पूर्ण होने के बाद या अपने पुत्र पुत्रीयों के विवाह के बाद गृहस्थ जीवन से मोह न करते हुए गृहस्थ का त्याग कर वानप्रस्थी बनना ही चाहिए।

वानप्रस्थाश्रम – गृहस्थाश्रम में सुख, सुविधा, मान, सम्मान, राग, आसक्ति मैं–मेरा का जो संस्कार पडा था उससे मुक्त होकर सरलता, सादगी से जीवन जीते तन मन को तपाने सुखदु:ख, अनुकूलता प्रतिकूलता मान अपमान से परे होकर सेवा, परमार्थ, स्वाध्याय यज्ञ और योग साधना करना वानप्रस्थी के कार्य है। वानप्रस्थाश्रम में पति पत्नी साथ रह सकते है किन्तु गृहस्थ की जैसे भोग, अधिकार आग्रह का त्याग कर सेवा, परमार्थ, यज्ञ, साधना में सहयोगी के तौर पर एक दूसरे को साथ देते है। वानप्रस्थ जीवन जीते हुए राग द्वेष, अनुकूलता– प्रतिकूलता अहंकार, अकड़ पकड़, मान अपमान, इत्यादी रजो तमो गुण से मुक्त हो कर सात्त्विक, आसक्ति, मोह रहित, दंभ छलरहित, निरुपद्रवी, एकांतवासी, अकिंचन, जीवन जीने के संस्कार प्रबल बनते है तब संन्यासी बन कर ईश्वर शरणागति स्वीकार कर व्यक्ति अपना श्रेष्ठ कल्याण करते है।

मनुष्य को प्रौढ़ अवस्था या वृद्धावस्था में लाचारी या बीमारी को प्राप्त होकर स्वयं पीड़ित होते मृत्यु से शरीर छुटे उससे पहले उचित समय पर वानप्रस्थी बनना ही चाहिए।

संन्यासाश्रम – संन्यासी ब्रह्ममय बनने एकलवासी जीवन जीते हुए स्वयं को संपूर्ण आसक्ति, ममता रहित, द्वैष रहित बनाकर ईश्वर को संपूर्ण समर्पित हो जाता है। संन्यासी ईश्वर शरणागति से जीवन जीते हुए मोक्ष पुरुषार्थ और निष्काम परमार्थ कार्य करते हुए ब्रह्ममय स्थिति में स्थित रहने अपने आपको सर्व प्रकार से साध लेता है। संन्यासी जीवन मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है, जिस मार्ग पर चलकर साधक ईश्वर अनुग्रह से मोक्ष को उपलब्ध हो सकते है।